IJAER/Nov-Dec 2020/Volume-9/Issue-6 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research

श्रीराम शर्मा आचार्य एवं सर्वपल्ली डॉ0 राधाकृष्णन के दार्शनिक विचारों में समानता

शोधार्थी
प्रदीप कुमार

शोध निर्देशक
डॉ0 प्रवीन कुमार

प्रस्तावना

व्यापक अर्थ में दर्शन का अर्थ केवल आत्मा–परमात्मा, जीव–जगत और प्रकृति के स्वरूप की व्याख्या करने तक ही सीमित नहीं हैं। वरन् इसके अन्तर्गत मानव जाति, उसके द्वारा विकसित ज्ञान–विज्ञान, उसकी समस्याओं और उसकी भौतिक तथा अभौतिक उपलब्धियों की तर्कपूर्ण एवं क्रमबद्ध विवेचना सम्मिलित है। अब दर्शन कोई ऐसा विषय नहीं है जो केवल बुद्धिवादियों तक ही सीमित हो। व्यापक अर्थ में प्रवृत्ति और मानव जीवन से किसी भी रूप में सम्बन्धित वस्तुओं के सम्बन्ध में तर्कपूर्ण, विधिसम्मत और क्रमित रूप से विचार करने की कला का नाम ही दर्शन है और वे सभी दार्शनिक हैं जो किसी कार्य को करने से पूर्व भली प्रकार से चिन्तन और मनन कर लेते हैं। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि शाश्वत् समस्याओं का चिन्तन ही दर्शन है और जो इन समस्याओं पर चिन्तन करते हैं वे दार्शनिक हैं।

श्रीराम आचार्य जी के अनुसार "विज्ञान मात्र प्रकृति के कुछ रहस्यों से पर्दा उठाता है किन्तु दर्शन विश्व चेतना के अनेक पक्षों पर प्रकाश डालता है, बताता है कि चिन्तन की धाराएँ किस प्रकार परिष्कृत की जा सकती हैं। प्रकृति की क्षमताएँ उपयोग में लोकर अनेक सुविधाएँ पायी जा सकती हैं।"[1]

विज्ञान जहाँ केवल प्रतीति जगत की क्रियाओं से सम्बन्धित है, वहीं दर्शन का सम्बन्ध सत् और संभूति दोनों से है। इस तरह विज्ञान को भी इसके अन्तर्गत ही मनना पड़ेगा। आचार्य जी के शब्दों में "दर्शन वृक्ष है"[2] मानव के अनुभवों में नित्य और अनित्य दोनों का स्थान है। अतः मानव के सम्पूर्ण अनुभव की व्याख्या के रूप में दर्शन सर्वांगीण सत्य की खोज है। दर्शन का विषय क्षेत्र बहुत व्यापक है। इसमें सम्पूर्ण जगत और

---

[1] श्रीराम शर्मा आचार्य – दर्शन की उपयोगिता विज्ञान से भी अधिक है, अखण्ड ज्योति वर्ष 35, अंक 12, पृष्ठ 20
[2] उपरोक्त

उसकी समस्त वस्तुओं और क्रियाओं के वास्तविक स्वरूप की खोज की जाती है। दर्शन के इस व्यापक विषय क्षेत्र को तीन भागों में बाँटा जा सकता है–

तत्व मीमांसा

ज्ञान मीमांसा

मूल्य मीमांसा

तत्व मीमांसा–तत्व मीमांसा का क्षेत्र बड़ा व्यापक है। इसमें सृष्टि, सत्ता, आत्मा–परमात्मा, ईश्वर के स्वरूप की खोज आती है।

ज्ञान मीमांसा–ज्ञान–मीमांसा के क्षेत्र में मानव बुद्धि, ज्ञान, ज्ञान प्राप्त करने के साधन व विधियाँ, ज्ञान की सीमा, प्रमाणिकता, सत्य–असत्य व भ्रम आदि की खोज आती है।

मूल्य मीमांसा–मूल्य मीमांसा के अन्तर्गत व्यक्ति के जीवन के मूल्यों, आदर्शों और लक्ष्यों पर विचार किया जाता है।

कहते हैं कि ज्ञान का स्रोत हमारे अन्दर ही विद्यमान हैं। ज्ञान कोई वस्तु या वस्त्र नहीं है जो दी या ली जा सके। ज्ञान अनुभव और क्रिया के साथ–साथ बढ़ता है। प्रत्येक मनुष्य के अन्दर आत्मा की असीम शक्ति है, भले ही वह उसको न जानता हो। अधिकतर लोग अपनी आत्मा को नहीं पहचानते और ज्ञान की तलाश में बाहर घूमते फिरते हैं। इस अन्तर्रात्मा का जान लेने के बाद बाहर से कुछ जानने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

ज्ञान अज्ञान का बोध है। अज्ञान का बोध ही ज्ञान की पहली व आखिरी क्रान्ति है। ज्ञान अज्ञान से जागता है। अज्ञान से पैदा होता है। अज्ञान स्वाभाविक है जैसे जागने से पहले निद्रा व हाश से पहले बेहोशी स्वाभाविक है। अज्ञान ज्ञान का विरोधी नहीं है। मिथ्याज्ञान ज्ञान का विरोधी है। अज्ञान ज्ञान का विरोधी तब बनता है जब अज्ञान कहता है कि मैं ही ज्ञान हूँ। मैं ही रहूँगा। मिथ्या ज्ञान आलस्य व अहंकार का परिणाम है। ज्ञान के लिए तप–योग व साधना करनी पड़ती है। ज्ञान को खोजना पड़ता है। वह सड़क पर पड़ा हुआ नहीं मिलता। ज्ञान का अर्थ है–अपने स्वरूप की पहचान करना। जिस किसी को ज्ञान हो जाता है तो वह अमरत्व को निश्चछल जानकर संसार के अनित्य पदार्थों में से किसी की इच्छा नहीं करता।

कहते हैं कि ज्ञान किसी के बनाये बनता नहीं। यदि किसी जीव ने या ईश्वर ने ज्ञान का निर्माण किया है तो उस निर्माण से पहले क्या ज्ञान नहीं था? ज्ञान का निर्माण भी तो ज्ञान से होगा। ज्ञान से ही ईश्वर, जीव, प्रकृति व जगत ज्ञात होगा। भगवान का दर्शन होगा तो उसका ज्ञान होगा। भगवान की पहचान पहले से ही होगी। इसलिए ज्ञान जीव, ईश्वर, प्रकृति किसी का भी बनाया हुआ नहीं है। ज्ञान स्वयं है और इसी से सब कुछ प्रतीत होता है। मनुष्य के जीवन में अनेकों बन्धन होते हैं जैसे अहं के बन्धन, मन के बन्धन, राग द्वेष के बन्धन, पाप–पुण्य के बन्धन, सुख–दुख के बन्धन, ज्ञान–अज्ञान के बन्धन आदि। ये सब बन्धन ज्ञान के द्वारा ही टूटते हैं। इसके लिए शास्त्र व सद्गुरू का श्रवण आवश्यक है।

डॉ0 राधाकृष्णन ने बताया है कि ज्ञान मूलतः तीन प्रकार का होता है, प्रत्यक्ष ज्ञान, प्रत्यात्मक ज्ञान एवं अन्तः प्रज्ञात्मक ज्ञान इत्यादि। प्रत्यक्ष ज्ञान सबसे प्रारम्भिक स्थिति है। इसके बाद प्रत्यात्मक ज्ञान होता है किन्तु इससे भी परे अन्तः प्रज्ञात्मक ज्ञान है। यह अन्तः प्रज्ञात्मक ज्ञान सम्पूर्ण अनुभव है। 'अनन्त आत्मा को केवल समपूर्ण आदर्श को खोजने से ही शान्ति मिल सकती है।' इस सम्पूर्ण अनुभव से न्यून अनुभव मरूस्थल में मृगतृष्णा के समान झूठा है और पानी के बुलबुले के समान खाली है। पूर्ण को अंश में नहीं ढूँढ़ा जा सकता। मनुष्य को सम्पूर्ण अनुभव से न्यून में शान्ति नहीं मिल सकती। किन्तु पूर्ण के अंश के रूप में किसी भी तत्व का अपना महत्व है। सम्पूर्ण अनुभव में सभी अनुभवों को विशिष्ट स्थान प्राप्त होता है। इस सम्पूर्ण अनुभव में दृष्टा दृश्य आदि का भेद नहीं है। यही जीवन का लक्ष्य है। इसके लिए संकुचित अहम् को त्यागना आवश्यक है। इसके लिए अशान्ति और विकलता को छोड़ना होगा। यह हमारी चेतना अथवा विचार शक्ति को ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण को क्रियाशील करता है। यह जीवन के अनुभव का प्रतिबिम्ब है। यह मनुष्य के अन्तर में निहित है। यह तादात्म्य द्वारा ज्ञान है। इससे बाहर कुछ नहीं है। कुछ भी इसके अतिरिक्त नहीं है। यह ज्ञान का मार्ग और लक्ष्य दोनों ही है। यह आत्मिक अनुभव है यह ब्रह्मनुभव है।'

कर्म

श्रीराम शर्मा आचार्य जी कहते हैं कि जो कर्त्तव्य, मानवीय गरिमा की परिधि में आता है, वह कर्म कहलाता है। इसके भी तीन भेद हैं, नित्य, नैमित्तिक व काम्य कर्म। नित्य कर्म जिनके न करने पर पाप का भोगी मनुष्य होता है, पर पुण्य मिले यह जरूरी नहीं। नैमित्तिक कर्म वे जो किसी निमित्त के उपस्थित होने पर किये जाते हैं, जैसे अतिथि के आने पर, पर्वों पर जयोतिर्विज्ञान की विशिष्ट युतियों ग्रहण आदि पर, इन्हें न करने से पाप होता है व करने से पुण्य मिलता है। काम्य कर्म वे हैं जो किसी कामना से किये जाते हैं,

काम्य कर्मों को काम न करने से पाप नहीं लगता, करने पर पुण्यों की प्राप्ति होती है। अकर्म उन्हें कहते हैं, जिनके न करने से पुण्य नहीं होता, परन्तु करने पर पाप लगता है। जो मानवीय गरिमा में नहीं आते, जिनकी उससे अपेक्षा नहीं की जाती।

प्राचीन भारतीय दार्शनिकों के साथ राधाकृष्णन ने मानव जीवन में कर्म के सिद्धान्त का महत्व माना है। कर्म के सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य का वर्तमान भूतकाल से और भविष्य वर्तमान काल से निर्धारित होता है। **डॉ0 राधाकृष्णन** के शब्दों में, 'संसार में हर वस्तु कारण भी है और कार्य भी है। उसमें अतीत की ऊर्जा संचित रहती है और वह भविष्य पर अपनी ऊर्जा का प्रयोग करती है। कर्म या अतीत के साथ सम्बन्ध का अर्थ यह नहीं है कि मनुष्य स्वतन्त्र रूप से कोई कर्म नहीं कर सकता बल्कि स्वतन्त्र कर्म तो उसमें अर्न्तनिहित है। जो नियम हमें अतीत के साथ जोड़ता है वह इस बात को भी पुष्ट करता है कि हम कर्म के नियम को अपने स्वतन्त्र कार्य से पराभूत कर सकते हैं। हो सकता है कि हमारे संचित कर्म हमारे मार्ग में बाधक बनें, किन्तु वे मनुष्य की सृजनात्मक शक्ति के आगे उस मात्रा में झुक जायेंगे जिस मात्रा में उसमें गम्भीरता और दृढ़ता होगी।' कर्म के सिद्धान्त में कहा गया है कि, 'जो व्यक्ति जितनी शक्ति का प्रयोग करेगा वह उतना ही फल पायेगा। विश्व व्यक्तिगत जीवन की माँग के प्रति अनुक्रिया करेगा और साथ ही उसे पूरा करेगा। प्रकृति मनुष्य की आग्रहपूर्ण पुकार का उत्तर देगी। इस प्रकार मार्क्स के साथ डॉ0 राधाकृष्णन यह मानते हैं कि मनुष्य संसार को बदल सकता है। अपने संकल्प के बल पर वह वर्तमान कर्मों के द्वारा भविष्य का रूप परिवर्तित कर सकता है।

डॉ0 राधाकृष्णन मानते हैं कि व्यक्ति को वेदना, भय अपनी तुच्छता का अनुभव, मृत्यु का भय, जीवन में मौजूद विसंगतियों की चेना आदि उसे प्रमुख रूप से धार्मिक और नैतिक दिशा में प्रेरित करते हैं। वे कहते हैं कि जीवात्मा का शुभ कर्मों के द्वारा कई जन्मों में विकास होता है। कर्म सिद्धान्त के सम्बन्ध में डॉ0 राधाकृष्णन कहते हैं कि, 'व्यक्ति की वर्तमान स्थिति उसके अतीत के कर्मों का फल है। व्यक्ति जिस प्रकार के कर्म करता है उन्हीं से उसके शरीर और परिवेश का निर्धारण होता है। जैसे कर्म होंगें वैसे ही आगे का जीवन होगा। लेकिन उनका कर्म सिद्धान्त इच्छा स्वातन्त्रय के विरूद्ध नहीं बल्कि उसे साथ लेकर चलता है। हम अपने वर्तमान कर्मों में शुभता लाकर (जो हमारी इच्छा के अधीन है) भविष्य के जवीन का निर्धारण कर सकते हैं। जैसी जिसकी भावना होती है वैसे ही उसके उद्देश्य होते हैं, जैसे उद्देश्य होते हैं, वैसे ही उसके कर्म होते हैं, जैसे उसके कर्म होते हैं, वैसे ही वह फल प्राप्त करता है।

निष्कर्ष

डॉ0 राधाकृष्णन एवं श्री राम शर्मा आचार्य दोनों ही दर्शन के महान व्याख्याकार हैं। उनके दर्शन का अपना एक दृष्टिकोण अवश्य है तथापि उनका दार्शनिक धरातल वेदान्तीय विचारों से अनुप्राणित है उनकी मौलिकता इसी तथ्य में है कि उन्होंने आधुनिक जीवन, जोकि आत्म चेतना का युग है, की आवश्यकता के परिप्रेक्ष्य में वेदान्त के आध्यात्मवादी दृष्टिकोण की अभिनव व्याख्या की और नव्यवेदान्त की स्थापना की। उनके दर्शन में सर्वांगीण दृष्टिकोण, समन्वय, मानवतावाद और अन्र्तराष्ट्रीयतावाद मिलते हैं। इसीलिए उनको आधुनिक युग में मानव चेतना का प्रतिनिधि दार्शनिक कहा जा सकता है। उनके अपने शब्दों में, 'हमें विश्व की एकता के लिए कार्य करना चाहिए। हमें एक ऐसी नयी पीढ़ी का निर्माण करना चाहिए, जिसका विश्वास आध्यात्मिक जीवन की महानता, पवित्रता तथा मानवता के प्रति भ्रातृभाव तथा प्रेम एवं शान्ति में हो।'

शोध ग्रन्थ सूची

- आचार्य पं0 श्रीराम शर्मा, युगदृष्टा का जीवन–दर्शन, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा।
- आचार्य पं0 श्रीराम शर्मा, युग निर्माण योजना–दर्शन स्वरूप व कार्यक्रम, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा।
- आचार्य पं0 श्रीराम शर्मा, प्रेरणाप्रद दृष्टान्त, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा।
- आचार्य पं0 श्रीराम शर्मा, समाज–निर्माण के विभिन्न चरण, अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा।